International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 118-123

न्यायिक सक्रियता एवं कार्यपालिका

सुमन चौधरी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, भारत

प्रस्तावना

लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका आवश्यक है। न्यायपालिका न केवल संविधान की व्याख्या समय–समय पर करता है बल्कि वह मानवाधिकारों तथा जन कल्याणकारी नीतियों के क्रियान्वयन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा का अधिकार प्राप्त है और इस प्रकार न्यायिक सक्रियता ने भारतीय प्रशासन पर अपूर्व प्रभाव छोड़ा है। सुशासन के आधारभूत सिद्धान्तों में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, जवाबदेही, समता, विधि का शासन आदि प्रमुख हैं और न्यायिक सक्रियतावाद में इन सिद्धान्तों की प्राप्ति में अपूर्व योगदान प्रदान किया है। न्यायिक सक्रियता एवं सामाजिक न्याय के मध्य घनिष्ट अर्न्तसम्बन्ध है और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने तथा संविधान में वर्णित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय के प्रावधानों व मानवाधिकारों की प्राप्ति में न्यायपालिका अहम् भूमिका निभाती है।

भारत सरकार, जो आधिकारिक तौर से संघीय सरकार व आमतौर से केन्द्रीय सरकार के नाम से जाना जाता है, 29 राज्यों तथा 7 केन्द्र शासित प्रदेशों के संघीय इकाई जो संयुक्त रूप से भारतीय गणराज्य कहलाता है, की नियंत्रक प्राधिकारी है। भारतीय संविधान द्वारा स्थापित भारत सरकार नई दिल्ली, से कार्य करती है।

भारत के नागरिकों से संबंधित बुनियादी दीवानी और फौजदारी कानून जैसे नागरिक प्रक्रिया संहिता, भारतीय दंड संहिता, अपराध प्रक्रिया संहिता, आदि मुख्यतः संसद द्वारा बनाया जाता है। संघ और हरेक राज्य सरकार तीन अंगो कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका के अन्तर्गत काम करती है। संघीय और राज्य सरकारों पर लागू कानूनी प्रणाली मुख्यतः अंग्रेजी साझा और वैधानिक कानून (English Common and Statutory Law) पर आधारित है। भारत कुछ अपवादों के साथ अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्याय अधिकारिता को स्वीकार करता है। स्थानीय स्तर पर पंचायती राज प्रणाली द्वारा शासन का विकेन्द्रीकरण किया गया है। भारत का संविधान भारत को एक सार्वभौमिक, समाजवादी गणराज्य की उपाधि देता है। भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है, जिसका द्विसदनात्मक संसद वेस्टमिन्स्टर शैली के संसदीय प्रणाली द्वारा संचालित है। इसके शासन में तीन मुख्य अंग हैं– न्यायपालिका, कार्यपालिका और व्यवस्थापिका।

भारत की स्वतंत्र न्यायपालिका का शीर्ष सर्वोच्च न्यायालय है, जिसका प्रमुख प्रधान न्यायाधीश होता है। सर्वोच्च न्यायालय को अपने नये मामलों तथा उच्च न्यायालयों के विवादों, दोनो को देखने का अधिकार है। भारत में 24 उच्च न्यायालय हैं, जिनके अधिकार और उत्तरदायित्व सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा सीमित हैं। न्यायपालिका और व्यवस्थापिका के परस्पर मतभेद या विवाद का सुलह राष्ट्रपति करता है।

कार्यपालिका के तीन अंग हैं – राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और मंत्रिमंडल। मंत्रिमंडल का प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। मंत्रिमंडल के प्रत्येक मंत्री को संसद का सदस्य होना अनिवार्य है। कार्यपालिका, व्यवस्थापिका से नीचे होता है। चूंकि भारत में राजनीतिक कार्यपालिका (मंत्रिपरिषद्) व्यवस्थापिका का अभिन्न हिस्सा होती है अतः सरकार की वास्तविक शक्तियों जिनमें विधि निर्माण भी सम्मिलित है, कार्यपालिका के नियंत्रण में दिखाई देती है, इसलिए कहा जाता है कि ''भारत में व्यवस्थापिका की शक्तियों तथा भूमिका का ह्रास हो रहा है और कार्यपालिका के निरंकुश शासन का दायरा विस्तृत होता जा रहा है।'' यद्यपि भारत में, अमेरिका की भांति पूर्णतया 'शक्ति पृथक्करण' का सिद्धान्त लागू नहीं होता है तथापि कार्यपालिका पर न्यायपालिका का पर्याप्त नियंत्रण व्याप्त है।[1]

जवाहर लाल नेहरू न्यायपालिका की स्वतंत्रता में पूरा विश्वास रखते थे, फिर भी उन्होंने 19 मई, 1951 को संसद में कहा कि बड़ी योजनाओं और बड़े सामाजिक परिवर्तनों में न्यायपालिका की कोई भूमिका नहीं है। हमारे देश में लिखित संविधान की व्याख्या, केन्द्र और राज्यों के बीच समन्वय तथा मौलिक अधिकारों की रक्षा के निमित्त एक स्वतंत्र न्यायपालिका का गठन किया गया है। जाहिर है कि उस दृष्टि से न्यायपालिका की भूमिका भारत में न्याय करने से लेकर मूल अधिकारों की रक्षा और सरकार के विभिन्न अंगों को अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र में रहने के लिये निर्देशित करने तक विस्तृत है, अर्थात् भारत में उच्चतम न्यायालय न सिर्फ संविधान की रक्षा करता है बल्कि किसी भी सरकार अथवा शक्ति द्वारा उल्लंघन किये जाने से भी बचाता है।[2]

भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि उसने विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था दी है। शक्तियों का यह विभाजन स्पष्ट कर देता है कि संविधान का उद्देश्य किसी को भी असीमित अधिकार और शक्ति प्रदान करना नहीं है। चूँकि शक्तियों की सीमाबद्धता का निर्धारण ये संस्थायें स्वयं नहीं कर सकतीं। इसलिए शासन की प्रक्रिया में इन शक्तियों के टकराव के फलस्वरूप उठने वाले विवादों के हल के लिए एक निष्पक्ष संस्था की भूमिका महत्वपूर्ण है। संसद, राज्यों की विधान सभायें या केन्द्र और राज्यों की कार्यपालिका यह काम करने में तब असमर्थ हो जाती हैं जब उन्हीं की कार्यप्रणाली पर प्रश्न खड़ा किया जाता है। अतः न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या का दायित्व सौंपा गया है और इस प्रकार से यह संविधान की रखवाली करती है।[3]

28 फरवरी, 1950 को सुप्रीम कोर्ट के उद्घाटन के अवसर पर मुख्य न्यायाधीश हीरालाल कानिया ने अपना रुख साफ कर दिया था कि न्यायपालिका कोई चुनौती देने की कोशिश न करे। संविधान के प्रथम संशोधन के साथ ही नवी अनुसूची का जन्म हुआ जिसमें रखे गये कानूनों की न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती थी। सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में इसे भी निरस्त किया है।

गोलकनाथ मामले में जब सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती तो उस समय इसे न्यायिक सक्रियता का सबसे बड़ा उदाहरण माना गया था। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के तत्कालीन सांसद नार्थपाई ने संसद के अधिकार को बहाल करने के लिए एक प्राइवेट मेंबर बिल पेश किया। इस बिल का जोरदार विरोध उस पार्टी के मनोहर लोहिया और मधु लिमये ने ही किया था। बाद में 1973 में कोर्ट में आए केशवानंद भारती प्रकरण में संविधान के मौलिक ढांचे में

संशोधन न करने की व्यवस्था देकर सुप्रीम कोर्ट ने संसद की शक्ति को हमेशा के लिए सीमित कर दिया।[4]

न्यायिक सक्रियता को उत्प्रेरित करने में न्यायालय द्वारा 'जीवन' के अधिकार की व्याख्या संबंधी फैसले ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उच्चतम न्यायालय के एक फैसले में संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए कहा कि 'प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता' में जीवकोपार्जन का अधिकार भी शामिल है। 'जीवन' का तात्पर्य सिर्फ भौतिक अस्तित्व नहीं, बल्कि एक सम्मानपूर्ण जीवन के साथ आधारभूत जरूरतों पर अधिकार भी शामिल है। न्यायालय के इस फैलसे से चिकित्सा सहायता और स्वास्थ्य अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता मिली। साथ ही उच्चतम न्यायालय ने यह भी घोषित किया कि अनुच्छेद 21 के तहत मिले जीवन के अधिकार में संक्रमणमुक्त जल और वायु भी शामिल है, ताकि व्यक्ति जीवन का पूरा सुख उठा सके। न्यायालय ने इस संबंध में समय–समय पर ऐसे कई आदेश दिए जिससे प्रदूषण फैलाने वाले कारखानों को या तो बंद करना पड़ा या उन्होंने इसे रोकने के लिए कोई व्यवस्था की।

कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच तनाव का एक और प्रसंग तब सामने आया, जब दिल्ली में बिजली संकट के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट में अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने कहा कि 'अदालत सुपर प्लानिंग कमीशन की तरह कार्य नही कर सकती। इसके पहले वन विभाग की विशेषज्ञता समिति के सदस्य नियुक्त करने के अधिकार को लेकर भी लोकतंत्र के इन दोनों स्तम्भों के बीच टकराव दिखाई दिया था। इसके अलावा लगातार विधायिका में भी अदालतों की अतिसक्रियता लोकर असहमति दिखाई दे रही है। लोकसभाध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी और पूर्व प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह भी न्यायपालिका की भूमिका पर नाराजगी व्यक्त कर चुके हैं यह दिख रहा है कि पिछले लंबे वक्त से अदालतें उन क्षेत्रों में दखल दे रही हैं, जो आमतौर पर कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र माने जाते हैं। संविधान की नवीं अनुसूची और पिछड़ों के आरक्षण के मुद्दे पर अदालत के रवैए से विधायिका नाखुश है, लगता यही है कि लोकतंत्र के इन स्तम्भों के बीच यह टकराव पूरी तरह खत्म नहीं होगा।[5]

सुप्रीम कोर्ट ने छत्तीसगढ़ सरकार के अवैध सलवा जूडुन अभियान के खिलाफ निर्णय देते हुए कहा है कि बिना किसी प्रशिक्षण और नियम–कानून के जनता के कुछ लोगों को विशेष पुलिस अधिकारी बनाकर हथियार देना और नक्सलवादियों से निबटने के नाम पर मनमानी की छूट देना असंवैधानिक है, जिसे तत्काल रोका जाना चाहिए। मजेदार बात यह है कि इस अवैध और विवादस्पद अभियान में केन्द्र सरकार भी मानदेय में 80 प्रतिशत का योगदान कर रही थी। गुरुल्लियों की तरह काम कर रहे इन 5000 विशेष पुलिस अधिकारियों पर नक्सलवाद के सफाये के नाम पर करीब 600 गांवों को लूटने और जलाने के आरोप लगाये जाते रहे हैं, लेकिन सरकार ने सशस्त्र सेना विशेषाधिकार अधिनियम की तरह इस मामले में भी आंखें बंद कर रखी थी।

वरिष्ठ अधिवक्ता और पूर्व केन्द्रीय मंत्री राम जेठमलानी की एक जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय ने जब काले धन पर पूर्व न्यायाधीश की देख–रेख में विशेष जांच दल का गठन किया तो सरकार बौखला गयी। माननीय न्यायमूर्ति एस0एस0 निज्जर और न्यायमूर्ति जी0 सुदर्शन रेड्डी की बेंच ने इस मामले में सख्त रुख अपनाते हुए यहां तक कहा कि उदारवादी आर्थिक नीतियां देश को लूट रही हैं और लालच की तरफ ले जा रही है। इससे पहले सुप्रीम कोर्ट योग गुरू बाबा रामदेव के द्वारा दिल्ली रामलीला मैदान में शांतिपूर्वक किये जा रहे अनशन को सरकार द्वारा पुलिस के जरिए बर्बर ढंग से कुचलने के खिलाफ भी तीखी टिप्पणी करते हुए जवाब तलब कर चुका है। थोड़ा और पीछे मुड़कर देखें तो सरकार ने भी एक तरह से पूरी बेशर्मी पर कमर बांध रखी है। वह लगातार यह दावे करती रहती है कि वह भ्रष्टाचार को खत्म करने को लेकर पूरी तरह गंभीर है लेकिन जब कानून के काम करने की बारी आती है तो वह आरोपियों के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है। पूर्व केन्द्रीय संचार मंत्री ए0 राजा का टूजी स्पेक्ट्रम मामला हो या आदर्श सोसायटी घोटाला। यूपीए सरकार के प्रमुख घटक द्रमुक प्रमुख की बेटी कनिमोझाी की गिरफ्तारी की बात हो या कॉमनवेल्थ गेम्स घोटाले के प्रमुख आरोपी सुरेश कलमाड़ी को जेल भेजने की मजबूरी पूर्व यू.पी.ए. सरकार ने ऐड़ी से चोटी तक जोर इनको बचाने के लिए लगाया, लेकिन जब सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को हड़काते हुए बार–बार उसकी काहिली पर उंगली उठाई, तब कहीं जाकर सरकार और कांग्रेस ने इन आरोपियों से पीछा छुड़ाया। जिससे सरकार की कथनी और करनी में अंतर के कारण न्यायपालिका को सक्रिय होना पड़ रहा है।

टूजी स्पेक्ट्रम मामले में उच्चतम न्यायालय ने 29 अक्टूबर, 2010 को सी0बी0आई0 को लापरवाही के साथ काम करने के लिए लताड़ा। ''कितना लंबा समय आप लेंगे? क्या और 10 साल?'' एक हफ्ते बाद न्यायाधीशों ने प्रधानमंत्री की ''निष्क्रियता और चुप्पी'' पर सवाल उठाते हुए मानों इतिहास ही रच दिया। अदालत ने मनमोहन सिंह से शपथ पत्र की मांग की। यह भी पहली बार हुआ। इतना ही नहीं 16 दिसम्बर, 2010 को अदालत ने एक दिलचस्प कदम उठाया। उसने सी0बी0आई0 के काम काज पर नजर रखने का फैसला करते हुए व्यापक जांच के तरीके पर सात सूत्री निर्देश दिए और अपील की कि वह इस ''षडयंत्र के लाभार्थियों, कार्पोरेट आकाओं, कारोबार के मालिकों, यहां तक कि सरकारी बैंकों और दूरसंचार की नियामक संस्था 'ट्राई' पर भी जांच करें।[6]

2 फरवरी 2011 से सी0बी0आई0 ने आरोपितों को गिरफ्तार होने वालों में ए0 राजा, पूर्व दूरसंचार सचिव सिद्धार्थ बेहुरा, डी0बी0 के प्रबन्ध निदेशक, शाहिद वलवा, और उसके भाई आसिफ वलवा और दो अन्य शामिल थे। न्यायालय ने जांच में तेजी लाने के लिए अदालत की पसंद के एक विशेष सरकारी वकील (जो आम तौर पर सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं) के अधीन रोज सुनवाई करने वाली विशेष अदालत को जांच का काम देकर एक और नया चलन शुरू करने का फैसला कया।

15 जुलाई 2011 को केन्द्रीय सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के विदेशी बैंकों में जमा काले धन के मामले की जाँच न्यायालय द्वारा नियुक्त की गई ''विशेष जाँच जल'' द्वारा करवाने के निर्देश को कार्यपालिका के अधिकारों का अतिक्रमण मानते हुए बड़ी पीठ में इसकी अपील दाखिल कर दी है। याचिका में केन्द्र ने सुप्रीम कोर्ट के उस फैसले पर पुनर्विचार और वापस लेने की माँग की है जिसमें उसे विदेश में जमा काले धन के मुद्दे पर जाँच में धीमी गति के लिए अदालत की ओर से फटकार भी लगी थी। पुर्नयाचिका दाखिल करने के इस निर्णय को सरकार की डूबती हुई साख को बचाने के लिए ''क्षति नियंत्रण प्रबंधन'' के तहत एक कदम ही माना जा रहा है। परन्तु इसका जनता पर विपरीत असर ही पड़ेगा। सरकार को तो विशेष जाँच दल को मान्यता देने और पूरा सहयोग करना चाहिए, क्योंकि ''विशेष जाँच समिति'' के बनने से देश की आम जनता में इस विश्वास की स्थापना होगी कि जनता के लूटे गये धन को वापस लाने की सचमुच कोशिश हो रही है।

समलैंगिकता मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र की खिचाई की। उच्चतम न्यायालय ने समलैंगिकता को अपराध के दायरे से बाहर लाने के अहम मुद्दे पर ढीला रुख अख्तियार करने कॉलेकर 20 मार्च, 2012 को केन्द्र सरकार की खिचाई की और इस बात

पर भी चिंता जतायी कि इतने अहम मुद्दों पर संसद चर्चा नहीं करती और न्यायपालिका पर सीमा लांघने का आरोप लगाती है। दिल्ली उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में सरकार के विभिन्न हलफनामों पर विचार के बाद न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी0एस0 सिंघवी तथा न्यायमूर्ति एस0जे0 मुखोपाध्याय की पीठ ने कहा कि केन्द्र ने मामले को काफी हल्के में लिया है, जिसकी निंदा किए जाने की जरूरत है।

पीठ ने कहा, ''उन्होंने इस मामले को काफी हल्के में लिया है। इस बर्ताव की निंदा किए जाने की जरूरत है और हम यह अपने फैसले में कहने जा रहे हैं, उच्चतम न्यायालय की पीठ ने कहा कि पिछले 60 सालों के दौरान संसद ने इतने अहम मुद्दे पर चर्चा नहीं की, लेकिन जब ऐसे मामलों पर अदालत कोई निर्णय करती है तो वे न्यायपालिका की ओर से सीमा लांघने की शिकायत करते हैं। पीठ ने कहा, ''सर्वोच्च विधायिका के पास ऐसे मुद्दों के लिए वक्त नहीं है, इन मुद्दों पर विचार करने के लिए विधायिका को वक्त मिले, इसके लिए इस देश के लोग कब तक इंतजार करेंगे। अपनी टिप्पणी में पीठ ने यह भी कहा कि विधि आयोग ने भी आईपीसी की धरा 377 को खत्म करने की सिफारिश दी थी, जिसके तहत समलैंगिक यौन सम्बंध को अपराध माना गया है और इसकी सजा के तौर पर अधिकतम उम्रकैद की सजा दी जा सकती है।

न्यायालय ने यह टिप्पणी तब की जब प्रख्यात फिल्मकार श्याम बेनेगल ने वरिष्ठ वकील अशोक देसाई के जरिए अपनी बातें रखीं कि विभिन्न कानूनों में सरकार संशोधन करती रही है, लेकिन सरकार इसका फैसला अदालत पर छोड़ देती है। बेनेगल समलैंगिक यौन संबंध को अपराध की श्रेणी से हटाने के पक्षधर हैं। बेनेगल ने कहा, ''सरकार लंबे समय से कानूनों में संशोधन करने में नाकाम रही है।[7]

दिल्ली उच्च न्यायालय ने 2009 में समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया था और व्यवस्था दी थी कि एकांत में दो वयस्कों के बीच आपसी सहमति से संबंध अपराध नहीं है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 (अप्राकृतिक अपराध के तहत समलैंगिक) संबंधों को अपराध माना गया है, जिसमें उम्र कैद तक की सजा का प्रावधान है। वरिष्ठ भाजपा नेता बी0पी0 सिंघल ने उच्च न्यायालय के फैसलो को यह कहकर उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी थी कि इस तरह की गतिविधियां अवैध, अनैतिक और भारतीय संस्कृति के मूल्यों के खिलाफ हैं। ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड, उत्कल क्रिश्चियन काउंसिल और एपोस्टोलिक चर्चेज जैसे धार्मिक संगठनों ने भी फैसलो को चुनौती दी थी। अब इसी श्रृंखला में सर्वोच्च न्यायालय ने 3 अक्टूबर, 2012 को निम्न तीन महत्वपूर्ण निर्णय सुनाये हैं।[8]

दूसरे निर्णय (2012) में न्यायमूर्ति सिंघवी और न्यायमूर्ति मुखोपाध्याय से राष्ट्रीय अनिवार्य औषधि सूची को अंतिम रूप देने में विलम्ब के लिए सरकार को फटकार लगाते हुए कहा कि दवाओं के दाम आम आदमी की पहुंच के भीतर होने चाहिए। अदालत ने केन्द्र सरकार को 348 जेनेरिक दवाओं को सरकारी नियंत्रण में लाकर एक सप्ताह के भीतर उनके दाम निर्धारित करने का आदेश भी दिया। इसके साथ ही न्यायाधीश सिंघवी ने यह कठोर टिप्पणी भी की कि देश चलाने का काम न्यायपालिका का नहीं है, लेकिन जब सरकार कुछ न करे तो हमें आगे आना ही होगा और हालात की मांग पर न्यायपालिका ऐसा करती है।

तीसरा निर्णय (2012) मुम्बई हमले (26/11) के अभियुक्त अजमल कसाब का अदालत में बचाव करने वाले 2 वकीलों राजू रामचंद्रन और गौरव अग्रवाल द्वारा इस मामले की फीस 15 लाख रुपये लेने की बजाय उसे दान करने से संबंधित है। सर्वोच्च न्यायालय की एक पीठ ने उक्त दोनों वकीलों के इस निर्णय की सराहना करते हुए महाराष्ट्र सरकार को आदेश दिया है कि यह राशि 26/11 हमले में शहीद महाराष्ट्र के 18 पुलिस कर्मियों व अन्य पुलिस कर्मियों के परिवारों में 6 सप्ताह के भीतर वितरित कर दी जाए।

जहाँ तक स्वच्छ पानी व शौचालय का संबंध है, यह आदेश केवल स्कूलों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। आज भी देश में बड़ी संख्या में लोगों को पीने के लिए स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं है और 65 करोड़ लोग खुले में शौच जाने को बाध्य हैं। न सिर्फ ग्रामीण बल्कि शहरी इलाकों में भी स्वच्छ पानी और पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं के लिए सार्वजनिक शौचालय की बेहद जरूरत है। शौचालय न होन से विशेष रूप से महिलाओं को होने वाली असुविधा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। गाँवों में महिलाएं दिन चढ़ने के बाद शौच के लिए जा भी नहीं सकतीं। खेतों में शौच के लिए गई महिलाओं के साथ बलात्कार आदि की घटनायें होना भी आम बात है। योजना आयोग अपने 2 शौचालयों के नवीनीकरण पर 35 लाख रुपये की भारी रकम खर्च करता है, जबकि देश की 65 करोड़ आबादी खुले में शौच करने के लिए विवश है। इसी प्रकार दवाओं की कीमतें बहुत ज्यादा होने के कारण आज इलाज करवा पाना आम आदमी की पहुंच से बाहर हो गया है। इसलिए दवाओं की कीमतों को नियंत्रण में रखने के संबंध में दिया गया न्यायालय का आदेश भी महत्वपूर्ण है। उक्त आदेशों से स्पष्ट है कि जो काम सरकार को करना चाहिए, उसकी निष्क्रियता के कारण न्यायपालिका को करने पड़ रहे हैं।[9]

14 सितम्बर, 2012 को कोयला आंवटन पर उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र सरकार से जवाब मांगा। कोयला ब्लाक आवंटन में कथित अनियमितता का मामला न्यायिक जाँच के दायरे में आ गया है, जब सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्र को यह स्पष्ट करने का निर्देश दिया कि क्या निजी कंपनियों को प्राकृतिक संसाधनों का आवंटन करते समय दिशा निर्देशों का सख्ती से पालन किया गया। शीर्ष अदालत ने केन्द्र की उस दलील को खारिज कर दिया, जिसमें उसने कहा था कि चूँकि इस मामले को संसदीय समिति देख रही है, इसलिये अदालत को इस मुद्दे पर विचार नहीं करना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा, ''ये अलग कार्य है', शीर्ष अदालत में न्यायमूर्ति आर0एम0 लोढ़ा और न्यायमूर्ति ए0आर0 दवे की पीठ ने कहा कि याचिका में गंभीर प्रश्न उठाये गये हैं और इस पर सरकार को स्पष्टीकरण देने की जरूरत है''। शीर्ष अदालत ने कहा, ''लोक लेखा समिति (पीएसी) का कार्य अलग है, संसद और पीएसी, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की रिपोर्ट के आधार पर काम करते हैं। हम उनके कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते, लेकिन याचिका में अलग विषयों को उठाया गया है, इसमें ठोस बातें उठायी गईं हैं, जिसके बारे में आपको स्पष्टीकरण देने की जरूरत है'', पीठ ने स्पष्ट किया कि वह केन्द्र की ओर से कोयला ब्लाक आवंटन के लिए तैयार किये गये दिशा निर्देशों से जुड़े आयामों तक ही अपने को सीमित रख रही है। न्यायालय ने यह आदेश कोयला ब्लाक आवंटन में कथित अनियमितता के बारे में वकील एम0एल0 शर्मा की ओर से दायर जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए दिया।

न्यायालय ने कहा कि सचिव को इन कोयला आवंटन के लिए अपनायी गयी प्रक्रिया का ब्यौरा देने के साथ ही यह भी बताना चाहिए कि क्या इन दिशा निर्देशों में ऐसी व्यवस्था निहित थी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आवंटित कोयला ब्लाक गलत ढंग से कुछ निजी कम्पनियों के पास न चली जाए। पीठ ने यह भी जानना चाहा कि क्या कोयला ब्लाक आवंटन में दिशा निर्देशों का सख्ती से पालन किया गया और क्या आवंटन के दौरान नीतियों के मकसद को पूरा किया गया।[10]

6 नवम्बर, 2012 को एफडीआई के मामले में उच्चतम न्यायलय ने कहा कि कार्यपालिका को नीति तैयार करने का अधिकार है और

उसे देश चालने का 'जनादेश' मिला है, लेकिन उसे संसद को सुनना होगा, जिनके प्रति वह जवाबदेह है। अदालत ने कहा –नीति तैयार करना कार्यपालिका का विशेषाधिकार है। सुप्रीम कोर्ट ने खुदरा कारोबार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, एफडीआई की मंजूरी देने की केन्द्र सरकार की नीति में फिलहाल दखल देने से इनकार कर दिया है, लेकिन साथ ही अदालत ने संकेत दिया है कि अगर संसद के शीतकालीन सत्र में एफडीआई की नीति का मसला संसद में नहीं पेश हुआ तो उसके बाद इस पर देश की सर्वोच्च अदालत में सुनवायी हो सकती है।

सुप्रीम कोर्ट के वकील मनोहर लाल शर्मा की ओर से दायर की गई जनहित याचिका पर टिप्पणी करत हुए अदालत ने कहा कि याचिकाकर्ता की यह आशंका निराधार भी हो सकती है कि सरकार इस कानून को संसद में नहीं पेश करेगी। इस बारे में संसद सत्र खत्म हो जाने के बाद विचार किया जायेगा। इसके बाद न्यायालय ने मामले की सुनवाई 22 दिसम्बर तक स्थगित कर दी। अदालत ने यह भी कहा कि नीति बनाना कार्यपालिका का विशेषाधिकार है। अदालत ने कहा कि अगर यह मामला संसद में नहीं टिकता है तो उसके नतीजे केन्द्र सरकार को झेलने होंगे। जस्टिस आर0एम0 लोढा और जस्टिस अनिल आर दवे की बेंच ने खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति देने के केन्द्र के निर्णय के खिलाफ वकील मनोहर लाल शर्मा की जनहित याचिका पर सुनवाई के दौरान कहा कि ''नीति तैयार करना कार्यपालिका का विशेषाधिकार है। उच्चतम न्यायालय ने यह नीति संसद में पेश करने का सरकार को निर्देश देने से इंकार करते हुए कहा कि संसद के शीतकालीन सत्र में भी वह खुद भी ऐसा कर सकती है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति देने के लिए फेमा कानून, 1999 की धारा 48 के अनुसार इस कानून के तहत बने प्रत्येक नियम और विनियम को संसद के समक्ष पेश करना चाहिए। याचिकाकर्ता चाहते थे कि इस मामले में न्यायालय दखल दे, क्योंकि संसदीय समिति ने भी खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के खिलाफ राय दी है। जजों ने कहा कि कार्यपालिका को नीति तैयार करने का अधिकार है और उसे देश चलाने का जनादेश मिला है, लेकिन उसे संसद को सुनना होगा, जिसके प्रति वह जवाबदेह है। अदालत ने कहा – नीति तैयार करना कार्यपालिका का विशेषाधिकार है, संसदीय समिति दार्शनिक के रूप में उसे सलाह दे सकती है और उसका मार्गदर्शन कर सकती है, लेकिन क्या अच्छा है इसका निर्णय तो कार्यपालिका ही करेगी। न्यायाधीशों ने यह भी कहा – हमने यह नहीं कहा कि आर्थिक नीति न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर होनी चाहिए, लेकिन न्यायालय को नीतिगत मामले में हस्तक्षेप करने में अत्यधिक मंद गति अपनानी चाहिए।[11]

6 फरवरी, 2013 को उच्चतम न्यायालय ने कर्नाटक को कावेरी नदी का 2.44 हजार क्यूबिक फीट (टीएमसी) पानी तमिलनाडु को नदी किनारे के खेतों में फसलों की सिंचाई के लिए देने का निर्देश दिया। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति आर0एम0 लोढ़ा की अध्यक्षता वाली पीठ ने कहा कि कर्नाटक तत्काल पानी छोड़े। न्यायालय का यह आदेश विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट मिलने के बाद आया है। समिति के सदस्यों ने तमिलनाडु में नदी किनारे के खेतों का दौरा किया था और इस आधार पर कहा कि फसलों के लिए 2.44 टीएमसी पानी छोड़ने की अनुसंशा की थी। न्यायालय ने फसलों की सिंचाई के लिए नौ टीएमसी पानी की तमिलनाडु की मांग भी खारिज कर दी। तमिलनाडु ने यह भी कहा कि समिति की रिपोर्ट वस्तुनिष्ठ आधारों पर नहीं है। तमिलनाडु की आपत्ति पर कड़ा ऐतराज दर्ज करते हुए न्यायालय ने कहा कि आपके अनुसार आप जो कह रहे हैं, उसे अकाट्य सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और उसी के अनुरूप निर्णय दिया जाना चाहिए।[12]

14 फरवरी 2013 को वीआईपी सुरक्षा को लेकर उच्चतम न्यायलय ने एक बार फिर सख्ती दिखाई है। उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र सरकार को नोटिस भेजकर वीआईपी लोगों की सुरक्षा पर खर्च की जानकारी मांगी है। इससे पहले सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि वीआईपी की जगह आम आदमी की सुरक्षा में सुरक्षा बल लगे होते तो दिल्ली ज्यादा सुरक्षित होती।[13]

उच्चतम न्यायालय ने जम्मू एवं कश्मीर में नियंत्रण रेखा (एलओसी) पर पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा भारतीय सैनिकों के सिर कलम किए जाने के मुद्दे पर एक याचिका की सुनवाई करत हुए 6 मार्च, 2013 को केन्द्र सरकार को नोटिस जारी किया है। याचिका में इस मामले को अंतर्राष्ट्रीय अपराध न्यायालय में उठाने की मांग की गई है। न्यायमूर्ति पी0 सतशिवम तथा न्यायमूर्ति जे0एस0 खेहर की पीठ ने सर्वा मित्तर की ओर से दायर जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए केन्द्र सरकार को नोटिस जारी किया। याचिका में कहा गया है कि भारतीय सैनिकों के साथ पाकिस्तानी सैनिकों का यह क्रूर और अमानवीय रवैया जेनेवा कन्वेंशन के खिलाफ है। याचिका में न्यायालय से केन्द्र को यह निर्देश देने की मांग की गई है कि वह पाकिस्तान से शहीद सैनिक हेमराज का सिर लौटाने को कहे। इसमें यह भी कहा गया है कि यदि पाकिस्तान हेमराज का सिर नहीं लौटाता तो उसके साथ सभी तरह के व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंध तोड़ लेना चाहिए। इस मामले में केन्द्र को नोटिस जारी करते हुए न्यायालय ने एक अन्य जनहित याचिका का जिक्र किया, जिसमें पाकिस्तानी सेना से कैप्टन सौरभ वालिया का क्षत–विक्षत शव लौटाने की मांग की गई है। यह याचिका अभी न्यायालय के सामने लंबित है। उल्लेखनीय है कि पाकिस्तनी सैनिकों ने आठ जनवरी, 2013 को जम्मू एवं कश्मीर के पुंछ जिले में भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ कर दो भारतीय सैनिकों के सिर कलम कर दिये थे।[14]

11 मार्च, 2013 को उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पिछले दिनों पंजाब के तरन तारन में पुलिस कर्मियों ने एक महिला के साथ जैसा बर्ताव किया, उसे देखकर जलियावांला बाग की याद ताजा हो उठी। साथ ही उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र तथा राज्य सरकारों को नोटिस जारी कर पुलिस सुधार की दिशा में उठाए जा रहे कदमों के बारे में जानकारी मांगी है। यह नोटिस केन्द्रीय गृह सचिव तथा सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित राज्यों के मुख्य सचिवों तथा पुलिस महानिदेशकों को भेजी गई है। न्यायमूर्ति जी0एस0 सिंघवी तथा न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ की पीठ ने पंजाब पुलिस के महानिदेशक से तीन मार्च को तरन तारन में एक महिला को पीटने के आरोपी पुलिस अधिकारियों के खिलाफ की गई कार्यवाही के संबंध में एक हलफनामा देने के लिए कहा है। पीठ ने इस घटना में पुलिस अधिकारियों पर तय की गई जिम्मेदारी के विवरण भी एक सप्ताह के अंदर मांगे हैं। इस घटना को कैमरे में कैद कर लिया गया था और उसे टीवी पर प्रसारित किया गया था। बिहार के पुलिस महानिदेशक तथा पुलिस आयुक्त को भेजे गए नोटिस में उनसे वेतन बढ़ाये जाने की मांग कर रही महिला शिक्षकों की पिटाई पर विस्तृत स्पष्टीकरण भी मांगा गया है। यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश और गुजरात के दो फैसलों को पलटकर ऐसी चर्चाओं पर विराम लगाने की कोशिश की है। फैसले में न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र को पुनः परिभाषित किया गया है। कोर्ट ने कहा है कि न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियों का अतिक्रमण नहीं कर सकती, क्योंकि वह राज्यों के अंगों के बीच शक्तियों के बटवारे के संवैधानिक नियमों का उल्लंघन होगा। पीठ ने कहा कि संविधान में शक्तियों का स्पष्ट बंटवारा है।[15]

इसी तरह तीन मार्च, 2011 को पी0जे0 थामस की सीवीसी के पद पर नियुक्ति संभवतः पहला अवसर था, जब किसी अदालत ने न सिर्फ इतने उच्च पदस्थ नियुक्ति को अवैध करार दिया, बल्कि उस अनुशंसा को ही रद्द कर दिया, जिसके आधार पर नियुक्ति की गयी थी। इस मामले में सरकार की दलील थी कि कार्यपालिका द्वारा की गयी नियुक्तियों की समीक्षा अदालत नहीं कर सकती, क्योंकि नियुक्ति उसका विशेषाधिकार है। सुप्रीम कोर्ट ने यह दलील खारिज करते हुए व्यवस्था दी कि नियुक्ति की न्यायिक समीक्षा संविधान के मूल ढांचे का हिस्सा है। इस मामले में भी सरकार की किरकिरी हुई।[16]

12 जनवरी, 2013 को राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने न्यायिक सक्रियता और न्यायपालिका की 'व्यापक भूमिका' की धारणा का जिक्र करते हुए कहा कि इस व्यापक भूमिका की धारणा ने शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांतों से भटकने पर कई बार विरोध का सामना किया है। बहरहाल, इस तरह की सक्रियता ने कुछ ऐसे सकारात्मक योगदान दिये हैं, जिन पर सवाल नहीं उठाये जा सकते। राष्ट्रपति मुखर्जी ने 'न्यायिक सुधार की हालिया प्रवृत्तियांः एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य' विषय पर एक अंतरराष्ट्रीय सेमिनार को संबोधित करते हुए कहा, 'लेकिन, मैं यहाँ एक एहितियाती बात कहना चाहूंगा कि प्रत्येक लोकतंत्र में कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका के बीच एक सूक्ष्म अंतर मौजूद है। राज्य के तीनों अंग अपनी जो भूमिका निभा रहे हैं, उनमें व्यवधान नहीं आना चाहिए।' उन्होंने कहा कि शासन के इन तीनों अंगों को अपनी सीमायें नहीं लांघनी चाहिए या ऐसी भूमिका नहीं निभानी चाहिए जिसकी संविधान उन्हें इजाजत नहीं देता है।[17]

देश के किसान किन विकट परिस्थितियों में परिश्रम कर अनाज उपजाते हैं, पर इस मेहनत का फल जरूरतमंदों तक कम पहुंच पाता है। कुप्रबंधन के चलते अनाज खुले मैदानों, रेलवे प्लेट फार्मों पर सड़ता जाता है। न्यायपालिका को ललकारना पड़ता है कि अनाज को सड़ाने के बजाय गरीबों में बांट दिया जाये। यह स्थिति कमजोर विधायिका एवं बेलगाम कार्यपालिका का घृणित सबूत है, साथ ही संवेदनशील न्यायपालिका का उज्जवल उदाहरण भी। इसी तरह काले धन पर सुप्रीम कोर्ट की विशेष निगरानी और विशेष दल बनाने के उसके आदेश पर सरकार को लग रहा है कि यह उसके अधिकारों में दखल है। उसने इसकी समीक्षा के लिये याचिका भी लगायी है। दरअसल, मौजूदा कानूनों में इस पर अंकुश लगाने की पर्याप्त व्यवस्था है, परन्तु सरकार की इच्छाशक्ति की कमी के चलते कालाधन फल–फूल रहा है।[18]

निष्कर्षतः हमें समझना होगा कि न्यायपालिका की यह सक्रियता विधायिका या कार्यपालिका में हस्तक्षेप या उसके अधिकारों में अतिक्रमण नहीं है। सरकार जनहित के अहम मुद्दों पर बेबस और लाचार दिखी तो न्यायपालिका को ऐसे कदम उठाने पड़े हैं। इसलिये जनता के बीच उसकी छवि लगातार कमजोर हो रही है। प्रधानमंत्री को समझना चाहिए कि शाहबानों केस में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को संसद ने बदल दिया था। उस समय राजीव गाँधी प्रधानमंत्री थे। उन्होंने संसद की ताकत को दिखाया था। पंड़ित जवाहर लाल नेहरू न्यायपालिका की स्वतंत्रता में पूरा विश्वास रखते थे। फिर भी उन्होंने 19 मई, 1951 में संसद में कहा था कि 'बड़ी योजनाओं और बड़े सामाजिक परिवर्तिनों में न्यायपालिका की कोई भूमिका नहीं है।

हमारे संविधान में तीनों स्तम्भों के काम स्पष्टतया रेखांकित किए गए हैं, फिर भी व्यावहारिक धरातल पर कहीं न कहीं कुछ धुंधले इलाके तो हमेशा ही बने रहेंगे, जिनकी व्याख्या अलग–अलग ढंग से की जायेगी। धीर–धीरे नई परिस्थितियों के संदर्भ में कुछ चीजं ज्यादा साफ होंगी। फिर भी पूरी तरह यांत्रिक ढंग से कार्य विभाजन शायद कभी संभव नहीं होगा। ऐसे में दो बातें महत्वपूर्ण हैं – एक, इस टकराव का रचनात्मक पक्ष देखा जाए और इससे एक ज्यादा बेहतर लोकतंत्र बनने के रास्ते ढूंढे जाएं। अगर यह टकराव सीमा में रहे तो निश्चय ही सबके लिए ज्यादा कार्यकुशल और चुस्त बने रहने की गुंजाइश बनाता है। दूसरी बात यह है कि हमारे लोकतंत्र के सभी स्तम्भ कहीं न कहीं जनता की जरूरतों और आकांक्षाओं से असंतुष्ट होकर लोग जन प्रतिनिधियों के पास भी जाते हैं और अदालतों के पास भी। ऐसे में सिर्फ न्यायपालिका ही नहीं विधायिका के लोग भी वे काम करते हैं, जो मूलतः कार्यपालिका के काम हैं। अगर संसद सदस्यों को यह शिकायत है कि न्यायपालिका उनके और कार्यपालिका के क्षेत्र का हनन कर रही है, तो वे खुद देखें कि वे कितने ऐसे काम करते है, जो कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में हैं। इस समस्या का हल बहुत पुराना है। अगर लोकतंत्र के सभी स्तम्भ अपने अधिकार क्षेत्र की सीमा विवाद को छोड़कर अपने कर्तव्यों पर ध्यान दें, तो कोई समस्या नहीं बचेगी। अधिकार क्षेत्र का सीमा विवाद किनारे रखकर ही वह सार्थक संवाद भी हो पायेगा, जो लोकतंत्र को बेहतर बनाता है। बावजूद इसके, कुछ एक विवादास्पद मुद्दों को यदि छोड़ दिया जाये तो यह सही प्रतीत होता है कि न्यायपालिका की सक्रियता ने सामाजिक न्याय को स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। निस्संदेह इस दृष्टि से न्यायिक सक्रियता स्वागत योग्य है। लेकिन यह उतना ही सही है कि अतिसक्रियता के खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। अतः न्यायपालिका को भी संतुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। दूसरी ओर, यदि कार्यपालिका निष्पक्षता से अपना कार्य करे तो न्यायालय को उतना सक्रिय नहीं होना होगा, जितना कि वह आज है। वास्तविकता तो यही है कि कार्यपालिका की अक्षमता के कारण ही न्यायपालिका को सक्रिय होना पड़ता है। यह सही है कि आज का समाज अधिक सजग तथा जागरूक हो गया है, और वह यह भलीभांति जानने लगा है कि कहां न्यायपालिका सही है और कहां कार्यपालिका। उसे इस बात का आभास हो चुका है कि जब भी किसी मामले में कार्यपालिका से चूक होती है, तो शीघ्र ही न्यायपालिका सक्रिय हो जाती है, और सच तो यह है कि समाज के लिए भी यह एक अच्छा संकेत है, क्योंकि इसकी तह में आम आदमी की सुरक्षा ही सर्वोपरि होती है। आखिर अदालतों की सक्रियता से आम आदमी को राहत तो मिलती ही है। न्यायपालिका पर सवाल उठाने से पहले उसके फैसलो को सही नियत से देखने की कोशिश करनी होगी। साथ ही, यदि कार्यपालिका निष्पक्षता से अपने कार्यों को अंजाम दे तो न्यायपालिका पर न अनावश्यक बोझ बढ़ेगा और न ही इस तरह के विवाद ही सामने आएंगे।

यद्यपि भारत में कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका अपने कार्यों के लिए स्वतंत्र हैं तथापि कार्यपालिका व विधायिका को नियंत्रित करने का अधिकार न्यायपालिका को प्रदान किया गया है, जिसे न्यायिक पुनर्वालोकन के रूप में जाना जाता है। कार्यपालिका को अधिक प्रभावी तथा जनकल्याणकारी बनाने हेतु न्यायपालिका समय समय पर न्यायिक सक्रियता के माध्यम से नियंत्रित करने का प्रयास करती है और इस प्रकार एक संवेदनशील सुशासन हेतु न्यायपालिका की न्यायिक सक्रियता महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ सूची

1. कटारिया, सुरेन्द्र, भारत में लोकप्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, 2011, पृ. 30
2. पाण्डेय, जय नारायण, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2005, पृ0सं0 334
3. सईद, एस0एम0, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2003, पृ0सं0 11

4- http://aajtak.intoday.in/story/SCropes-govt.says.com1-bi-casual-about-homo.sexuality-1-6939 html - 20 march-2012.
5. हिन्दुस्तान, लखनऊ संस्करण, 18 दिसम्बर 2007, पृष्ठ संख्या 4
6- http:// aajtak.intoday.in/story/SC- issue.notice+0 control - gov-on-coal - alloction - 1-707919.html - 14 sept 2012.
7. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2004 पृ. 266–67
8. एस.के. सरकार, जनहित याचिका, ओरिएन्ट पब्लिशिंग कम्पनी, 2014, पृ. 70
9. डा. करहत खान, न्यायिक प्रक्रिया, अमर लॉ पब्लिकेशन्स, इन्दौर, 2015, पृ. 239
10. प्रकाश नारायण नाटाणी, भारत में न्यायपालिका, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर 2014 पृ. 138
11. हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, 23 नवम्बर, 2011, लखनऊ